ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2018; 4(1): 250-252
www.allresearchjournal.com
Received: 24-11-2017
Accepted: 29-12-2017

डॉ. अंजना रानी
एसोसिएट प्रोफेसर,
दर्शनशास्त्र, श्री गोविंद गुरु राजकीय महाविद्यालय,
बांसवाड़ा, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अंजना रानी
एसोसिएट प्रोफेसर,
दर्शनशास्त्र, श्री गोविंद गुरु राजकीय महाविद्यालय,
बांसवाड़ा, राजस्थान, भारत

भारतीय चिंतन में धर्म और नीति

डॉ. अंजना रानी

सारांश
स्वर्ग के प्रलोभन से और नरक के भय से प्राचीन काल में व्यक्ति धर्म या नीति का पालन करता था। विज्ञान के विकास ने स्वर्ग और नरक की अवधारणा को संदेह के घेरे में ला दिया है। आज आधुनिक मनुष्य को धर्म के रास्ते पर या नीति के मार्ग पर प्रेरित करने के लिए बोध को जागृत करना होगा। उस बोध को जागृत करने में धर्म और नीति की व्यापक एवं सूक्ष्म समझ बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। पूरब की दृष्टि में जहां धर्म सब कुछ है, वहां पश्चिम की दृष्टि में नीति प्रमुख है। सामान्य लोगों के लिए धर्म और नीति पर्यायवाची है। मेरे इस शोध लेख से धर्म और नीति के संबंध में भारतीय संस्कृति की व्यापक और सूक्ष्म दृष्टि पर प्रकाश पड़ता है, जो धर्म से भ्रष्ट होते हुए और नैतिकता से दूर जाते हुए जनसामान्य को श्रेय मार्ग पर लाने में मददगार साबित हो सकती है।

कूटशब्द: धर्म, नीति, अभ्युदय, नि:श्रेयस, कर्तापन, निष्कामता

प्रस्तावना

प्रायः भारत के लोग धर्म और नीति को एक समझते हैं। पूरब की दृष्टि धर्म और नीति को अलग-अलग नहीं मानती जबकि पश्चिम की दृष्टि मानती है कि धर्म अलग है जिसका संगठनात्मक स्वरूप होता है, और नीति अलग है जो कर्मों के औचित्य और अनौचित्य को निर्धारित करती है। धार्मिक और दार्शनिक मनीषियों के अनुसार धर्म का केंद्रीय विषय जहां कर्ता रहता है, वही नीति कर्म को प्रमुखता देती है। भारतीय चिंतना में कर्ता को प्रमुखता देने का कारण यह रहा कि कर्म अंततः कर्ता की दृष्टि, उसकी सोच और उसके ज्ञान से ही नि:सृत होते हैं। दूसरी महत्वपूर्ण बात कि किसी भी कर्म के पीछे नीयत बहुत महत्वपूर्ण होती है। और नीयत कर्ता से संबंधित होती है। गंगोत्री साफ और शुद्ध हो तो वहां से निकलने वाली धारा निर्मल ही होगी।

महाभारत के अनुशासन पर्व में धर्म का जो लक्षण दिया गया है, वही भारतीय नीति चिंतन का आधारभूत और सारभूत सिद्धांत भी है, वह है -

"न तत् परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मन:
एष संक्षेपतो धर्म: कामादन्य: प्रवर्तते।।" [1]

अर्थात् जो बात अपने मन को प्रतिकूल लगे, वह दूसरों के प्रति भी नहीं करनी चाहिए, यही धर्म का संक्षिप्त लक्षण है। इससे भिन्न जो बर्ताव होता है, वह कामनामूलक है।

श्रीमद्भागवत गीता का मूल संदेश अर्जुन अर्थात् कर्ता को निष्काम कर्म में प्रेरित करना था। जोर कर्ता के रूपांतरण पर था। कर्मों की निष्कामता तभी संभव है जब कर्ता की प्रज्ञा स्थिर हो।

भारतीय श्रमण परंपरा में जैन दर्शन के त्रिरत्न -सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र और पंच महाव्रत- सत्य, अहिंसा, अस्तेय ,ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह हो या बौद्ध दर्शन का 'मध्यम मार्ग' सभी का फोकस कर्ता पर है।

आधुनिक नीति चिंतकों में गांधी के सत्य,अहिंसा को समझने का प्रयास करें या फिर विवेकानंद दर्शन को जानने का; सभी की चिंतना कर्ता से कर्म की ओर प्रवाहित होती दिखाई देती है।

'सत्यम् शिवम् सुंदरम्' जैसे उदात्त आदर्शों की उपलब्धि के लिए मानव संघर्षरत है और इन्हीं की खोज में मनुष्य ने धर्म, विज्ञान और कलाओं का विकास किया है।

धर्म के वास्तविक स्वरूप को न समझ पाने के कारण आधुनिक जगत में धर्म के प्रति एक प्रकार से अवहेलना एवं उपेक्षा का भाव बन गया है। आधुनिक बुद्धिवादी युग में कुछ लोगों के लिए धर्म केवल रूढ़ियों, रीति-रिवाजों और शास्त्रों की आज्ञाओं का अनुशीलन, कुछ निश्चित विधि-विधानों का अनुकरणमात्र ही रह गया है।

धर्म के लिए अंग्रेजी शब्द *Religion* प्रयुक्त होता है जो 'Religare' से बना है, जिसका अर्थ होता है बांधना। भारतीय दृष्टि 'धारणात् धर्ममित्याहु:'[2] अर्थात् जो संपूर्ण विश्व का अधिष्ठान है, वही धर्म है; ऐसा मानती है।

वैशेषिक सूत्र में धर्म को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि –

"यतोअभ्युदय नि:श्रेयस् सिद्धि: स धर्म:"[3] अर्थात् धर्म वह विद्या है जिससे अभ्युदय (इह लोक में उन्नति) और नि:श्रेयस् (मोक्ष) दोनों ही मिले।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्मलक्षणम्॥" [4]

धृति (धैर्य), क्षमा, दम (इंद्रियों पर नियंत्रण), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (अन्तरंग और बाह्य शुचिता), इन्द्रिय निग्रहः (इन्द्रियों को वश मे रखना), धी (बुद्धिमत्ता का प्रयोग), विद्या (अधिक से अधिक ज्ञान की पिपासा), सत्य (मन वचन कर्म से सत्य का पालन), और अक्रोध (क्रोध न करना), — धर्म के ये दस लक्षण हैं। इनको धारण करना "धर्म" है।

गहराई से विचार करने पर हम पाएंगे कि भारतीय दर्शन धर्म को स्वभाव, कर्तव्य, गुण,सत्कर्म, पुण्य, सत्य, ईमान जैसे अर्थों में समझता रहा है। भारतीय चिंतन धारा धर्म और नीति पर पृथक-पृथक विचार नहीं करती।

पश्चिमी दृष्टि में ओल्ड टेस्टामेंट के द्वारा दस कर्म बताए गए हैं, जो नीति के आधार है। इस परिप्रेक्ष्य में धर्म और नीति में कुछ मूलभूत अंतर स्पष्ट होते हैं-*1.* धर्म का केंद्रीय विषय कर्ता रहता है जबकि नीति कर्म को प्रमुखता देती है। *2.* धर्म व्यक्ति सापेक्ष होता है जबकि नीति समाज सापेक्ष। धर्म स्वयं व्यक्ति के अभ्युदय और नि:श्रेयस सिद्धि के लिए उन्मुख है जबकि नीति समाज में व्यवस्था स्थापित करने के लिए आचरण के कुछ नियामक निर्धारित करने की ओर उत्सुक है।

एक उदाहरण से समझने का प्रयास करें तो यह अंतर और स्पष्ट हो सकता है। यदि कोई व्यक्ति किसी जरूरतमंद की मदद करता है यह सोच कर कि भविष्य में उससे भी मदद की जरूरत पड़ सकती है तो उसका यह कार्य एक नैतिक कार्य कहा जाएगा। लेकिन इस दान को धार्मिक व्यवहार होने के लिए दानी के अंदर भी रूपांतरण होना आवश्यक है। कर्ता को सब कुछ ईश्वर पर अर्पित मानना चाहिए, सब कुछ देकर भी उसके अंदर ऐसा भाव होना चाहिए, मानो उसने कुछ नहीं किया है। उसे अपने भीतर कर्तापन के भाव को त्यागकर अपने आप को निमित्तमात्र मानना चाहिए।

उसके अंदर विनम्रता का भाव होना चाहिए और कृतज्ञता का भाव भी होना चाहिए क्योंकि उसके दान को किसी ने ग्रहण कर लिया। नैतिक स्तर पर दान को शुभ तथा उचित कहा जाएगा परंतु इसे धार्मिक होने के लिए उसमें शुचिता का भाव होना आवश्यक हो जाता है। धार्मिक व्यवहार में इसलिए गहराई आ जाती है कि नैतिक आदेश को ईश्वरीय आदेश मान लिया जाता है। ईश्वरीय आदेश मान लेने पर कर्तव्य पालन करने में एक अलौकिक आनंद और तृप्ति का भाव समाविष्ट हो जाता है। यदि हम धार्मिक उत्प्रेरणा की मदद न लें तो कर्तव्य पालन करने में विभिन्न वृत्तियों और प्रलोभनों के वशीभूत हो, पथभ्रष्ट होने की संभावना बनी रहती है। ऐसी स्थिति में नैतिक व्यवहार में निश्चितता नहीं पाई जाती। इससे भिन्न धार्मिक व्यवहार में व्यक्ति के अंदर स्थाई परिवर्तन हो जाता है। बाल्या भील डाकू से संत वाल्मीकि बन जाता है और कामुक तुलसीदास भक्त प्रवर रामदास हो जाते हैं। धार्मिक व्यवहार को संपूर्ण व्यक्तित्व का प्रकाशक कहा जाता है जबकि नैतिक व्यवहार में वृत्तियों के बीच संघर्ष रहने के कारण व्यक्तित्व का आंशिक रूप ही सक्रिय हो पाता है।

कर्तापन का भाव समाप्त हो जाने से धार्मिक व्यवहार में फलाशक्ति को छोड़ने और निष्कामता फलित होने में मदद मिलती है। अपेक्षाशून्यता घटित होने पर व्यक्ति तनावरहित जीवन या दूसरे शब्दों में आनंदमय जीवन जीकर यथास्थिति में ही धन्यता का अनुभव कर पाता है।

जहां नीति इहलोक और स्थानीयता तक सीमित होती है वही धर्मप्रेरणा से 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना प्रबल होती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. महाभारत,अनुशासन पर्व 113/8.
2. महाभारत, शांतिपर्व, सत्यानृताध्याय
3. वैशेषिक 1/1/2.
4. मनुस्मृति 6 /92
5. राम नारायण व्यास-धर्म-दर्शन,मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी
6. विवेकानंद साहित्य : अद्वैत आश्रम, मायावती
7. इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन्स एंड एथिक्स